THE ECONOMIC TIMES

Date: 19-02-20

Arming Women, As Well as Army

ET Editorials

For a country that routinely invokes the protective-destructive capabilities of Shakti, Durga and Kali, and sings ballads about the valour of Rani Lakshmibai of Jhansi, it is a matter of irony that it took a Supreme Court order for female officers in its army to get the same status as their male counterparts in terms of promotions, ranks, benefits and pensions — but in non-combat support services. Women are still excluded from combat roles. This should change. Women should have not just the right to permanent commission but the right to command combat troops.

But a patriarchal, rather than a professional, mindset lingers. This was reflective in the Government of India's argument, set aside by the court, which dwelt on 'physical limitations' of women and their domestic obligations, and asserted that '(male) troops are not yet mentally schooled to accept women officers in command'. Rather than wait for 'society' to change its anachronistic views on both what women are capable of, as well as what a 21st-century army's requirements are, the court has put the right formation into action, and helped combat social prejudice, too. This isn't only about 'equal opportunities'. A short athlete will be a liability on a basketball court, a vision-impaired person can't be a sniper, a woman, or a man, not making the cut must stay out of the army. Instead, it's about getting rid of ingrained notions of the 'weaker sex' — Chief of Defence Staff Gen Bipin Rawat had stated in 2018 that 'a woman would feel uncomfortable at the front line'.

The US, Britain and Israel have women in their combat forces. It's time the second-largest army in the world followed suit. The only criterion for women — and men — is capability. In this case, what's sauce for the gander should be sauce for the goose.

दैनिक भास्कर

Date: 19-02-20

'पैरासाइट' से बॉलीवुड शर्मिंदा क्यों न हो ?

50 से अधिक प्रविष्टियों के बावजूद हमारे हाथ खाली हैं और ईरान व चिली भी हमसे आगे हैं

रुचिर शर्मा, (ग्लोबल इन्वेस्टर, बेस्टसेलिंग राइटर और द न्यूयॉर्क टाइम्स के स्तंभकार)

हॉलीवुड में आज इस बात पर चर्चा बंद नहीं हो रही है कि किस तरह से एक दक्षिण कोरियाई फिल्म पैरासाइट ने सबटाइटिल की एक इंच की बाधा को पार किया और ऑस्कर में सर्वोच्च पुरस्कार पाने वाली पहली विदेशी फिल्म बनी। मेरे जैसे भारत के फिल्मों के शौकीन के लिए पैरासाइट ने फिर एक बार से वही पुराना सवाल खड़ा कर दिया है कि दुनिया में सर्वाधिक फिल्में बनाने वाला भारत क्या एक ऐसी अच्छी फिल्म नहीं बना सकता, जो एकेडमी पुरस्कार के लायक हो? भारत ने कभी सर्वोत्तम विदेशी फिल्म का पुरस्कार भी नहीं जीता है। ऐसा नहीं है कि उसके प्रयासों में कमी रही। 1957 में इस पुरस्कार की स्थापना के बाद से उसने कम से कम 50 बार प्रविष्टि दाखिल की है। केवल फ्रांस और इटली ही ऐसे हैं, जिहोंने भारत से अधिक बार अपनी प्रविष्टियां दाखिल की हैं, लेकिन उन्होंने कई बार पुरस्कार भी हासिल किया है। केवल यूरोपीय फिल्म पॉवरहाउस ही ऑस्कर में चमके हों, ऐसा नहीं है। 27 देशों की फिल्मों को सर्वोत्तम विदेशी फिल्मों का पुरस्कार मिला है। इनमें ईरान, चिली व आइवरी कोस्ट भी शामिल हैं।

भारत के समर्थक इसके लिए कई तरह की दलीलें देते हैं कि भारतीय प्रविष्टि को चुनने वाली कमेटी ने कमजोर चयन किया। जो कंटेट भारतीय दशकों को भाता है वह वैश्विक दर्शकों को पसंद नहीं आता। हमारा घरेलू बाजार ही बहुत बड़ा है और हमें अंतराराष्ट्रीय दर्शकों को खुश करने की जरूरत ही नहीं है। इन सबसे ऊपर, भारतीय फिल्में विश्व स्तर की हैं, लेकिन एकेडमी पक्षपाती है और गुणवत्ता की पारखी नहीं है। इनमें से कोई भी दलील मामूली या सामान्य जांच में भी टिक नहीं सकती। भारतीय फिल्में ऑस्कर ही नहीं, बल्कि हर प्रमुख फिल्म समारोह में लगातार मुंह की खा रही हैं। इनमें से बहुत ही कम कान, वेनिस या बर्लिन में मेन स्लेट में जगह बना पाती हैं। कोई भी भारतीय फिल्म आज तक कान में पाम डी'ऑर या फिर बर्लिन में गोल्डन बियर नहीं जीत सकी। इसलिए यह कहना पूरी तरह भ्रामक है कि दुनिया में फिल्मों का आकलन करने वाले सभी जज भारतीय फिल्मों को लेकर गलत हैं।

ठीक है, मीरा नायर ने वेनिस में मानसून वेडिंग के लिए सर्वोच्च पुरस्कार जीता दो दशक पहले 2001 में। और उन्होंने अपने अधिकांश कॅरियर में भारतीय फिल्म उद्योग के बाहर ही काम किया है। सच यह है कि भारत विश्व स्तर की फिल्में नहीं बना रहा है और यह सिर्फ कुछ समय से ही नहीं है। दुनिया के प्रमुख फिल्म आलोचकों द्वारा न्यूयॉर्क टाइम्स से लेकर इंडीवायर तक सभी प्रकाशनों में आने वाली सूचियों पर नजर डालेंगे तो पिछले एक साल, एक दशक या फिर एक सदी या अब तक की टॉप फिल्मों की सूची में एक भी भारतीय फिल्म नहीं दिखेगी। करीब एक साल पहले बीबीसी ने 43 देशों के 200 फिल्म आलोचकों के बीच कराए गए सर्वे के आधार पर 100 विदेशी सर्वकालिक फिल्मों की सूची बनाई थी। इसमें सिर्फ सत्यजीत रे की पाथेर पांचाली ही स्थान बना सकी थी और यह फिल्म भी 1955 में रिलीज

हुई थी। इसका मतलब यह नहीं है कि भारतीय निर्देशकों को विदेशी समीक्षकों और वैश्विक दर्शकों के लिए फिल्म बनानी चाहिए। वे मानवीय भावनाओं को झकझोरने में सक्षम महान फिल्में बना सकें और कम से कम एक भारतीय फिल्म तो कभीकभार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान पा सके।

चीन, जापान और ब्राजील की फिल्म इंडस्ट्री भी सिर्फ अपने घरेलू दर्शकों को ध्यान में रखकर फिल्में बनाती है, लेकिन ऑस्कर, फिल्म समारोहों और प्रसिद्ध समीक्षकों के बीच उनका प्रदर्शन भारत से कहीं अच्छा रहता है। अंतरराष्ट्रीय दर्शकों की नजर में आने से पहले ही पैरासाइट दक्षिण कोरिया के सिनेमाघरों में सनसनी फैला चुकी थी। फिर भारतीय सिनेमा के खराब स्तर की वजह क्या है? फिल्में लोकप्रिय संस्कृति से प्रवाहित होती हैं, लेकिन हम सेलेब्रिटी को लेकर इस हद तक जूनूनी हैं कि वह गुणवत्ता खराब कर रहा है। किसी भी अन्य प्रमुख फिल्म इंडस्ट्री में सितारे फिल्म के बजट का इतना बड़ा हिस्सा नहीं लेते हैं कि निर्माता के पास स्क्रिप्ट, संपादन और उन बाकी कलाओं के लिए पैसे की कमी हो जाए, जिनसे महान फिल्म बनती है। कई बार स्क्रिप्ट स्टार को ध्यान में रखकर लिखी जाती है न कि कहानी को और यही सबसे बड़ी वजह है कि हमारी फिल्मों के प्रति अंतरराष्ट्रीय आलोचक उदासीन रहते हैं।

भारत को इससे बेहतर की उम्मीद करनी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में जो भारी भरकम भारतीय दल जाता है, उसका फोकस फिल्म के कंटेट की बजाय इस बात पर अधिक रहता है कि हमारे स्टार रेड कारपेट पर क्या पहन रहे हैं। वहां से लौटकर मीडिया भी उन ब्रांडों की क्लिप चलाते हैं, जो भारत में अपना सामान बेचना चाहते हैं, लेकिन इस बात पर कुछ नहीं कहते कि भारत बार-बार खाली हाथ क्यों लौट रहा है। वे बहुत कम की उम्मीद करते हैं और वही पाते हैं।

इसे बदलने के लिए घरेलू फिल्म इंडस्ट्री से जुड़े अधिक से अधिक लोगों को इस मध्यमता को पहचानने की जरूरत है और एक विश्व स्तर का कंटेंट बनाने के लिए भीतर से तीव्र इच्छा जगाने की जरूरत है। ऐसा दबाव बनने के कुछ संकेत भी हैं। पिछले कुछ सालों में बड़े स्टार वाली फिल्में जहां धड़ाम हो गईं, वहीं कम बजट की और अच्छी कहानी वाली फिल्मों का प्रदर्शन बहुत अच्छा रहा। बॉक्स ऑफिस पर दर्शकों की संख्या स्थिर रहने और लाइव स्ट्रमिंग, डिजिटल गेमिंग के साथ ही स्क्रीन मनोरंजन के कई अन्य विकल्पों के उभरने से भारतीय निर्माताओं को यह समझने की जरूरत है कि व्यावसायिक रूप से बने रहने के लिए क्वालिटी ही एक मात्र रास्ता होगा। तब तक न्यूयॉर्क में रहने वाला मुझ जैसा भारतीय सिनेमा का फैन मैनहट्टन के उस एकमात्र थिएटर में जाता रहेगा, जो हिंदी फिल्म दिखाता है। यह उस देश से जुड़े रहने का एक जरिया है, जिसे मैं बहुत प्यार और याद करता हूं। मैं यह उम्मीद करना भी जारी रखूंगा कि भविष्य में एक दिन मुझे पैरासाइट जैसी एक भारतीय फिल्म मिलेगी।

Date: 19-02-20

पहले शांत क्षेत्रों में मिले महिला ऑफिसरों को कमान

सेना में चयन के कड़े मानदंड होने से सुप्रीम कोर्ट का फैसला लागू करने में दिक्कत नहीं

लेफ्टि. जनरल एसए हसनैन, कश्मीर में 15वीं कोर के पूर्व कमांडर

भारतीय सेना में पहली बार महिला ऑफिसरों का प्रवेश 1992 में हुआ था। उस समय सेवा की अवधि और शर्तें स्पष्ट थीं। यह पांच साल के लिए शॉर्ट सर्विस कमीशन (एसएससी) था। बाद में इसे 10 और फिर 14 साल किया गया। 2008 से महिला ऑफिसर्स दो विभागों जज एडवोकेट जनरल (जेएजी) व आर्मी एजुकेशन कोर (एईसी) में नियमित कमीशन ले सकती थीं। लेकिन युद्धक (कॉम्बेट) शाखाओं में उन्हें कमीशन हासिल नहीं था। एएससी भी सिर्फ पांच युद्धक सहायक शाखाओं सिग्नल, इंजीनियर्स, आर्मी एयर डिफेंस, एविएशन और इंटेलीजेंस व तीन सेवाओं एएससी, एओसी व ईएमई में ही था। समय के साथ जब महिला ऑफिसर्स के बाहर जाने का समय आता था तो वे पुरुष सहयोगियों के साथ दिक्क्तों को लेकर निराशा व्यक्त करती थीं और समाधान के लिए कानूनी कार्रवाई की मांग करती थीं। ये केस लंबे समय तक लटके रहते थे और इन्हें हर स्तर पर चुनौती दी जाती थी। कार्यकाल पूरा करने वाली कुछ महिला ऑफिसर चली जाती थीं, बाकी कानूनी फैसले का इंतजार करती थीं।

महिला ऑफिसरों के लिए स्थायी कमीशन न होने की वजह से उनके सामने कॅरियर के सीमित अवसर थे और उन्हें पहले सिलेक्ट रैंक कर्नल के लिए प्रोन्नत करने पर विचार भी नहीं होता था। भारतीय सेना में कॅरियर कमान दायित्व में प्रदर्शन पर निर्भर करता है। सेना में कमान का दायित्व कर्नल के रैंक से शुरू होता है। इसके लिए एक ऑफिसर को सब यूनिट स्तर पर एक मेजर/ले.कर्नल के रूप में कमान की मानदंड नियुक्ति प्रक्रिया से गुजरकर एक प्रमोशन बोर्ड के सामने खुद को सिद्ध करना होता है। लेकिन महिला ऑफिसरों को यह मौका ही नहीं दिया जाता था। सितंबर 2019 में रक्षा मंत्रालय ने एक विसंगति को दूर कर दिया और अप्रैल 2020 से महिला ऑफिसरों को नियमित कमीशन देना स्वीकार कर लिया, लेकिन इसके लिए वे महिला ऑफिसर ही योग्य मानी गईं, जिनकी नियुक्ति 2014 के बाद हुई थी। हालांकि, इसमें महिला ऑफिसरों के लिए समान अवसरों और उनका कॅरियर मैनेजमेंट कैसे सुनिश्चित होगा, इस बारे में कोई जिक्र नहीं था। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मुताबिक सभी महिला ऑफिसर नियमित कमीशन ले सकेंगी, चाहे उनकी नियुक्ति की तिथि कोई भी हो। इसका मतलब अपना कार्यकाल पूरा करने के बावजूद कोर्ट के फैसले का इंतजार कर रही, महिला ऑफिसर भी नियमित कमीशन पा सकेंगी और 54 साल की उम्र तक नौकरी कर सकेंगी। हालांकि, कोर्ट के फैसले में यह स्पष्ट होना बाकी है कि महिला अधिकारियों की नियुक्ति पुरुष एसएससी ऑफिसरों की ही तरह चयन से होगी या अलग तरह से। क्योंकि कार्यकाल और सेवा शर्तों में समानता की बात कही गई है, इससे संभावना है कि नियमित कमीशन के लिए एक चयन बोर्ड का गठन होगा और सभी महिला ऑफिसरों को नियमित कमीशन नहीं मिलेगा। इसने महिला ऑफिसरों के कॅरियर मैनेजमेंट का मसला भी हल कर दिया है। अब सब यूनिटों में टेस्ट के बाद वे सभी 18 शाखाओं/सेवाओं में प्रोन्नति पा सकेंगी। महिला ऑफिसरों को कमान नियुक्ति न देने का तर्क दो बातों पर आधारित था। पहला इसमें शारीरिक खतरा बहुत अधिक था और दूसरा पुरुष सिपाही महिला कमांडिंग ऑफिसर को रिपोर्ट करने के लिए मानसिक तौर पर तैयार नहीं थे। सुप्रीम कोर्ट ने इन तर्कों को नकार दिया और महिला ऑफिसरों के कॅरियर मैनेजमेंट और दायित्व के नए दौर की शुरुआत कर दी।

इस पर सोशल मीडिया में बहस चल रही है और सेना में भी राय बंटी है। मेरे जैसे अनेक ऑफिसरों ने कश्मीर जैसे चुनौती वाले इलाकों में महिला ऑफिसरों के साथ काम किया है और मैं उनकी प्रोफेशनल क्षमता और समर्पण का साक्षी रहा हूं। बेहतर होगा कि सेना चयनित महिला ऑफिसरों को पहले तीनों सेवाओं में शांत क्षेत्रों में कमान दे और उसके बाद फील्ड एरिया में भेजे। इसी तरह सेना की पांचों शाखाओं में यही नीति अपनाई जाए पर इसकी पांच साल में समीक्षा का प्रावधान हो। सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर आपत्ति जताने वाले लोगों को अहसास नहीं है कि सेना में चयन के कड़े मानदंड हैं। ऐसा नहीं है कि हर अनुपयुक्त महिला ऑफिसर को कमान दायित्व मिल जाएगा। केवल सर्वोत्तम ही उन मानदंडों को पूरा कर पाएंगी, जो पुरुष अफसरों के ही समान हैं। सेना में उत्कृष्टों को सम्मान उनकी प्रोफेशनल क्षमताओं और

मानवीय गुणों से ही मिलता है। सच यह है कि कॅरियर के पूर्ण अवसर मिलने से उनको हर स्तर पर बेहतर करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा और इससे वे उन कमियों से भी उबर सकेंगी, जो उनके प्रदर्शन में देखी जाती हैं। अभी महिलाओं का युद्धक शाखा में प्रवेश होना बाकी है। समय आने पर यह भी होगा पर इस फैसले के लिए जमीन अभी तैयार करनी होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 19-02-20

आरसेप का विकल्प खुला रहे तो बेहतर

आरसेप व्यापार समझौते में न शामिल होकर भारत अपने लिए जोखिम पैदा कर रहा है। वह नियम बनाने वालों से नियम का पालन करने वालों की श्रेणी में शामिल हो सकता है।

श्याम सरन , (लेखक पूर्व विदेश सचिव और सीपीआर के सीनियर फेलो हैं)

भारत ने गत वर्ष क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी (आरसेप) में शामिल नहीं होने का निर्णय लिया था। इस संधि से संबंधित वार्ता अंतिम दौर की ओर बढ़ रही है और वर्ष 2020 के अंत तक यह समझौता अंतिम रूप ले लेगा। भारत ऐसी क्षेत्रीय व्यापार व्यवस्था को स्वीकार करने को तैयार नहीं था जिसमें उसे आयात वृद्धि से निपटने की सीमित पात्रता थी। उत्पादों के मूल स्थान से संबंधित नियमों को लेकर कुछ मसले थे। मूल स्थान वाला मुद्दा पहले ही आपूर्ति शृंखला आधारित क्षेत्रीय रूप से एकीकृत व्यापार नेटवर्क में निहित है। आमतौर पर किसी भी कारोबारी साझेदार का उत्पाद कई अन्य देशों से आए घटकों और वस्तुओं से बनता है। किसी विशेष मुल्क को ध्यान में रखकर किए गए कारोबारी उपाय और शुल्क बहुत मायने नहीं रखते। भारत यदि इन आपूर्ति शृंखलाओं का हिस्सा नहीं है तो इसमें उसका ही नुकसान है। इसलिए क्योंकि विभिन्न कारोबारी साझेदारों के साथ अलहदा शुल्क व्यवहार एक जटिल कवायद है।

बहरहाल, यदि भारत मानता है कि उसके कारोबार का भविष्य क्षेत्रीय और वैश्विक आपूर्ति शृंखला का हिस्सा बनने में है तो आरसेप से बाहर रहने का निर्णय विरोधाभासी है। यदि भारतीय बाजार के आकार का लाभ लेते हुए आरसेप की आपूर्ति शृंखला में शामिल हुआ जाता कहीं अधिक बेहतर रणनीति होती। इससे बुनियादी ढांचे, व्यापार सुविधा उपायों और गुणवत्ता आदि में तत्काल सुधार देखने को मिलता क्योंकि आपूर्ति शृंखलाओं के लिए यह ज्यादा उपयोगी होता है। आपूर्ति शृंखला केवल कम शुल्क वाली व्यवस्था में कारगर हो सकती है जहां घटकों और कच्चे माल का उदारतापूर्वक आयात किया जा सके।

ताजातरीन आर्थिक समीक्षा में भी यह अनुशंसा की गई है कि भारत को चीन जैसा, श्रम आधारित निर्यात दायरा तैयार करना चाहिए और देश में बढ़ते युवाओं के लिए रोजगार के जबरदस्त अवसर तैयार करने चाहिए। यहां आवश्यकता यह है कि नेटवर्क उत्पादों पर ध्यान केंद्रित किया जाए। ये वे उत्पाद होते हैं जो तमाम मूल्य शृंखलाओं में तैयार होते हैं जहां असेंबली शृंखला बड़े पैमाने पर इनका उत्पादन करती हैं। कहा जाता है कि ऐसा करने से देश में असेंबलिंग का काम मेक

इन इंडिया के साथ एकीकृत होगा। बजट पेश करते समय अपने भाषण में वित्त मंत्री ने आर्थिक समीक्षा की बात दोहराते हुए कहा कि भारत को नेटवर्क्ड वस्तुएं बनाने की आवश्यकता है। ऐसा करके वह वैश्विक मूल्य शृंखला का हिस्सा बन सकता है। इससे निवेश ज्यादा आता है और युवाओं को ज्यादा रोजगार प्राप्त होते हैं।

इस संदर्भ में भारत को भी आरसेप को लेकर खुले दिमाग का परिचय देना चाहिए। बाली में गत 3 और 4 फरवरी को आरसेप सदस्यों की अनौपचारिक बैठक में शामिल होने के आसियान के न्योते का सकारात्मक प्रत्युत्तर इसी क्रम में था। वार्ताकारों को असेंबल इन इंडिया नीति को बातचीत की टेबल पर लाना था। वह साझेदारों की हमारी कुछ चिंताओं को दूर करने की इच्छाशक्ति का भी परीक्षण कर सकता था। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह अवसर गंवा दिया गया। जैसा कि हमने पहले कहा आपूर्ति शृंखला कम शुल्क की व्यवस्था में काम करती है। जबकि बीते चार बजट में शुल्क बढ़ाया गया है। भारत आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के 25 वर्ष के रुझान से पीछे हट रहा है। आयात प्रतिस्थापन की नीति तेजी से मजबूत हो रही है लेकिन उसका नीतिगत असर क्या होगा इसे लेकर भ्रम है। क्या नीतिगत चयन रुपये की कमजोर विनिमय दर में नहीं दिखना चाहिए? क्या विदेशी निवेश ऐसे क्षेत्रों में बुलाया जाना चाहिए जहां भारतीय कारोबारी कमजोर हैं?

वित्त मंत्री की बातों से भी स्पष्ट है कि देश संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। उन्होंने कहा, 'यह देखा गया है कि मुक्त व्यापार समझौतों के तहत होने वाला आयात बढ़ रहा है। इसके लाभ के अवांछित दावों से घरेलू उद्योग को खतरा पैदा हो गया है। ऐसे आयात पर कड़ी निगरानी की जरूरत है। इस संदर्भ में सीमा शुल्क अधिनियम में उपयुक्त प्रावधान शामिल किए जा रहे हैं। आने वाले महीनों में हम स्रोत आवश्यकता के नियम की समीक्षा करेंगे। खासकर चुनिंदा संवेदनशील वस्तुओं के बारे में ताकि यह सुनिश्चित हो कि मुक्त व्यापार समझौते नीतिगत दिशा के साथ सामंजस्य में हों।'

सीमा शुल्क में ऐसा ही एक प्रस्तावित संशोधन उल्लेखनीय है। अधिनियम की धारा 11 (2) का एक प्रावधान केंद्र सरकार को यह अधिकार देता है कि वह देश की अर्थव्यवस्था को सोने या चांदी के अनियंत्रित आयात या निर्यात से होने वाले नुकसान से बचाए। इस प्रावधान में संशोधन कर इसमें सोने और चांदी के अलावा 'कोई अन्य वस्तु' का प्रावधान जोडऩा चाहती है। यह एक अहम व्यापार प्रतिबंध वाला उपाय होगा और यह स्पष्ट नहीं है कि यह विश्व व्यापार संगठन के साथ हमारे नए दायित्वों के अनुरूप होगा या नहीं।

अब ज्यादातर वैश्विक व्यापार व्यापक क्षेत्रीय समझौतों के अधीन होते हैं। उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता, यूरोपीय संघ और लैटिन अमेरिका की में ऐसी व्यवस्थाएं हैं। आरसेप एशिया में उनका समकक्ष होगा। विश्व व्यापार संगठन की भूमिका कमजोर पड़ी है और अबाध व्यापार और निवेश प्रवाह की अवधारणा के साथ, खासकर विकासशील देशों में, हम तेजी से विश्व व्यापार व्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं। यह प्रत्युत्तर के सिद्घांत पर आधारित होगा और व्यापार प्रवाह पर शुल्क का असर कम तथा मानकों, विशिष्टताओं, बौद्घिक संपदा संबंधी उपायों तथा पर्यावरण मानक का असर अधिक होगा। इस नई विश्व व्यवस्था की निगरानी सुधरे हुए और पुनर्गठित विश्व व्यापार संगठन के हाथ होगी। चीन और अमेरिका जैसे बड़े कारोबारी देशों के अलावा अन्य देशों के लिए यहां सीमित गुंजाइश होगी तथा बड़े क्षेत्रीय कारोबारी समझौते अहम होंगे। भारत का विदेश व्यापार वैश्विक व्यापार के दो फीसदी से कम है। यदि भारत इन समझौतों में से किसी का हिस्सा नहीं बना तो वह नियम बनाने वालों में नहीं रह जाएगा। इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए क्योंकि हमारी भविष्य की आर्थिक संभावनाएं इससे जुड़ी हैं।

सन 1991 में जब भारत ने आर्थिक सुधार और उदारीकरण की नीतियां अपनाईं तब आशंका थी कि देश का उद्योग जगत लडख़ड़ा जाएगा। ये आशंकाएं निर्मूल साबित हुईं और भारत स्थायी रूप से उच्च वृद्घि पथ पर वापस आ गया। सफल आर्थिक नीति को छोडऩे और नाकाम आयात प्रतिस्थापन को को अपनाने का क्या तुक है? देश को वैश्विक असेंबली हब बनाने और उसके बाद विपरीत नीतियां अपनाने की बात अनुपयुक्त है।

जनसत्ता

Date: 18-02-20

स्त्री की शक्ति

संपादकीय

जिस दौर में स्त्रियों ने अमूमन हर स्तर पर यह साबित किया है कि वे घर से लेकर दहलीज से बाहर किसी भी मोर्चे पर मुश्किल और जटिल हालात का बराबरी से सामना कर सकती हैं, उसमें उनकी क्षमताओं को कठघरे में करना अपने आप में बेहद अफसोसनाक पहलू है। खासतौर पर सैन्य महकमों में अलग-अलग भूमिकाओं में खुद को सौंपी गई ड्यूटी को महिलाओं ने जिस कुशलता से निभाया है, वह उनकी बहादुरी और काबिलियत का सबूत है। अगर केंद्र सरकार की इच्छा से सब कुछ होता तो शायद सेना में संघर्ष रही महिलाओं को फिर निराशा ही हाथ लगती। लेकिन सोमवार को सेना में महिलाओं की भूमिका को लेकर सुप्रीम कोर्ट ने जो ऐतिहासिक फैसला सुनाया, वह आने वाले दिनों में एक बड़े और क्रांतिकारी बदलाव का वाहक बनेगा। अदालत ने साफ लहजे में कहा कि शॉर्ट सर्विस कमीशन के तहत आने वाली सभी महिला अफसर स्थायी कमीशन की हकदार होंगी। हालांकि युद्ध में सीधे लड़ने देने का फैसला सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार और सेना पर छोड़ दिया है और इसे नीतिगत मामला बताया है। मगर थलसेना में महिला अफसरों की कमांड पोस्टिंग पर रोक को बेतुका बता कर अदालत ने इसे बराबरी के अधिकारों के खिलाफ कहा।

गौरतलब है कि इस मुद्दे को लेकर महिलाएं लंबे समय से कानूनी लड़ाई लड़ रही थीं और पुरुष वर्चस्व के समांतर भेदभाव के खिलाफ बराबरी के अधिकार की मांग कर रही थीं। स्थायी कमीशन से लेकर यूनिट और कमान के नेतृत्व यानी कमांड पोस्टिंग को लेकर सरकार का रुख बेहद नकारात्मक था और अदालत में जिस तरह की दलीलें दी गईं, वे न केवल बेहद उथली थीं, बल्कि बराबरी के मूल्यों पर आधारित एक आधुनिक समाज की परिकल्पना के खिलाफ भी। जहां खुद सरकार को समाज में फैली महिलाओं के प्रति पिछड़ी और सामंती धारणाओं को दूर कर लैंगिक समानता की दिशा में देश को आगे बढ़ने देना चाहिए था, वहां उसने अदालत में महिलाओं की क्षमता को कठघरे में खड़ा किया और यहां तक कि स्त्री के विरुद्ध औसत पुरुषों की मानसिकता में गहरे पैठी कुंठा को अपने तर्क के रूप में भी पेश किया। सरकार का कहना था कि यूनिटों में तैनात ज्यादातर पुरुष सैनिक ग्रामीण पृष्ठभूमि से हैं और वे महिला अफसरों का हुक्म मानने में 'संकोच' कर सकते हैं। अव्वल तो ग्रामीण परिवेश के लोगों के प्रति यह सरकार का बेमानी पूर्वाग्रह और तंग नजरिया है, दूसरे, ऐसा कह कर क्या सरकार सेना के तहत मिलने वाले प्रशिक्षण और अनुशासन पर सवालिया निशान नहीं लगा रही थी ?

इसके अलावा, सरकार ने इस मसले पर **मातृत्व** या बच्चों की देखभाल और पारिवारिक **स्थितियां**, मनोवैज्ञानिक सीमाएं और महिलाओं के पुरुषों के मुकाबले **शारीरिक** रूप से कमजोर होने को जिस तरह दलील के **रूप** में पेश किया, वह हैरान करने वाला था। स्वाभाविक रूप से सुप्रीम **कोर्ट** ने इस तरह की धारणाओं के लिए सरकार को सख्त फटकार लगाई और कहा शारीरिक सीमाओं और सामाजिक **मानदंडों** के चलते महिला अफसरों को स्थायी कमीशन **नहीं** देने की केंद्र की दलीलें परेशान करने वाली हैं और इन्हें कतई मंजूर नहीं किया जा सकता। सेना में उपलब्धियों और भूमिकाओं को लेकर महिलाओं की क्षमताओं पर शक करना **महिलाओं** के साथ सेना का भी अपमान होगा। यों भी, न केवल सैन्य बलों के भीतर, बल्कि समूचे समाज के स्तर अगर पुरुषों के मानस में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और सामंती जड़ताएं कायम हैं तो यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह ऐसी प्रतिगामी मानसिकता से समाज को **निकालने** के लिए हर स्तर पर कदम उठाए। पुरुष अगर अपने भीतर **किसी** तरह की कुंठा पाल कर जीते हैं, तो इसकी कीमत स्त्रियां क्यों चुकाएं ?

Date: 18-02-20

चुनौती बना ई-कचरे का ढेर

श्रीलाल प्रदीक्षित

देश में डिजिटल क्रांति के साथ-साथ ई-कचरे की समस्या भी बढ़ी है और आज यह विकराल **रूप** धारण कर चुकी है। ई-कचरे को नष्ट करने के उपाय समझ नहीं आ रहे। आज का युग प्रौद्योगिकी का है। इसमें **इलेक्ट्रॉनिक** कचरे का बढ़ते जाना निश्चित ही गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है। आज नवाचारों के कारण **विभिन्न** प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक उद्योग फल-फूल रहे हैं। **इलेक्ट्रॉनिक** वस्तुओं का उपयोग और साथ ही इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के नित नए रूप लोगों को इस ओर आकर्षित करते हैं **कि** वे अधिक से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का उपयोग **करें** और पुरानी वस्तुओं का त्याग करें। इसी कारण स्थिति यह बन **चुकी** है कि आज भारत इलेक्ट्रॉनिक कचरा घर बन गया है। लेकिन चुनौती इस बात की है कि इस कचरे को नष्ट कैसे **किया** जाए, कैसे इसे दोबारा इस्तेमाल के लायक बनाने के उपाय खोजे जाएं।

ई-कचरे में टीवी, फ्रिज, एसी, कंप्यूटर **मॉनिटर**, कंप्यूटर से जुड़े दूसरे हिस्से और पुर्जे, कैलकुलेटर, मोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक मशीनों के कलपुर्जे शामिल होते हैं। ई-कचरा हानिकारक इसलिए है कि इलेक्ट्रॉनिक सामान बनाने में जो रसायन और पदार्थ इस्तेमाल होते हैं, वे काफी **हानिकारक** होते हैं। इलेक्ट्रॉनिक कचरे से तांबा, चांदी, सोना, प्लैटिनम आदि कुछ मूल्यवान धातुएं प्राप्त करने के लिए इन्हें प्रसंस्कृत करना होता है, जो काफी जटिल काम है। यह पर्यावरण के लिए भी निश्चित रूप से हानिकारक है। कुछ **इलेक्ट्रॉनिक** उपकरण और बिजली का सामान सीसा, **जस्ता**, कैडमियम, बेरियम जैसी धातुओं से बनाए जाते हैं और जब ये **हानिकारक** तत्त्व पानी में मिल जाते हैं तो उसे जहरीला कर देते हैं।

एसोचैम के एक अध्ययन में कहा गया है कि असुरक्षित ई-कचरे के पुनर्चक्रण (फिर से किसी उपयोग के लायक बनाने) के दौरान उत्सर्जित रसायनों / प्रदूषकों के संपर्क में आने से तंत्रिका तंत्र, रक्त प्रणाली, गुर्दे और मस्तिष्क विकार, सांस संबंधी बीमारियां, त्वचा विकार, गले में सूजन, फेफड़ों का कैंसर और हृदय संबंधी रोग तेजी से हमला करते हैं। मोबाइल फोन में इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक और विकिरण पैदा करने वाले कलपुर्जे तो लंबे समय तकनष्ट ही नहीं होते। सिर्फ एक मोबाइल फोन की बैटरी छह लाख लीटर पानी दूषित कर सकती है। जल-जमीन यानी हमारे वातावरण में मौजूद ये खतरनाक रसायन कैंसर आदि कई गंभीर बीमारियां पैदा करते हैं।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा मोबाइल उपभोक्ता देश है। यहां पंद्रह लाख टन से भी ज्यादा ई-कचरा तैयार होता है। लेकिन इसका उचित निपटान अथवा प्रबंधन गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है। वर्ष 2011 में ई-कचरा प्रबंधन के लिए कुछ नियम बनाए गए थे। तब यह तय हुआ था कि जो भी उत्पाद तैयार होंगे, उनके लिए राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों से मंजूरी लेनी होगी और वे पर्यावरण के अनुकूल हों। इसके बाद ई-कचरा प्रबंधन नियम 2016 बनाया गया, जिसे 2017 में लागू किया गया। इसमें ई-कचरे के प्रबंधन को दुरुस्त किया गया। साथ ही 'उत्पाद उत्तरदायित्व संगठन' के नाम से व्यवस्था भी बनाई गई। इसके अलावा केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड यह निरीक्षण करेगा कि बाजार में ऐसे कौन से उपकरण या उत्पाद उपलब्ध हैं, जिनका निस्तारण संभव नहीं है और जो मानव और पर्यावरण के लिए खतरनाक हैं। ऐसी सभी वस्तुओं का पता लगा कर बाजार से उनकी वापसी की जाएगी। कचरे की वैश्विक मात्रा साल 2016 में 4.47 करोड़ टन थी, जो वर्ष 2021 तक साढ़े पांच करोड़ टन तक पहुंच जाने की संभावना है। भारत में करीब बीस लाख टन सालाना ई-कचरा पैदा होता है। दुनिया में सबसे ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक कचरा पैदा करने वाले शीर्ष पांच देशों में भारत का नाम भी शुमार है। इसके अलावा इस सूची में चीन, अमेरिका, जापान और जर्मनी भी हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में करीब बीस लाख टन सालाना ई-कचरा पैदा होता है और कुल 4,38,085 टन कचरे का हर साल पुनर्चक्रण किया जाता है। ई-कचरे में आमतौर पर फेंके हुए कंप्यूटर मॉनीटर, मदरबोर्ड, कैथोड-रे-ट्यूब (सीआरटी), प्रिंटेड सर्किट बोर्ड (पीसीबी), मोबाइल फोन और चार्जर, कॉम्पैक्ट डिस्क, हेडफोन के साथ एलसीडी (लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले) या प्लाज्मा टीवी, एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर शामिल हैं।

दुखद तो यह है कि खराब बुनियादी ढांचे और कानूनों के चलते भारत के कुल ई-कचरे के केवल पांच फीसद हिस्से का ही पुनर्चक्रण हो पता है। जबकि ई-कचरे का पनचानवे फीसद हिस्सा असंगठित क्षेत्र और इस बाजार में कबाड़ियों के हाथों में चला जाता है जो इसे गलाने के बजाय तोड़ कर फेंक देते हैं। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि जैसे-जैसे भारत के लोग अमीर बनते जा रहे हैं, वैसे-वैसे और ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक सामान और उपकरण खरीदने पर खर्च करते जा रहे हैं। एक अनुमान के मुताबिक कुल ई-कचरे में कंप्यूटर उपकरण सत्तर फीसद, मोबाइल व इससे जुड़े उपकरण बारह फीसद, बिजली के उपकरण आठ फीसद, चिकित्सा उपकरण सात फीसद और बाकी घरेलू सामान का योगदान चार फीसद है।

इस वक्त भारत में ई-कचरे पैदा होने की दर, उसे पुनर्चक्रित करने की क्षमता से 4.56 गुना अधिक है। बढ़ते हुए ई-कचरे का बड़ा कारण अधिक से अधिक लोगों द्वारा प्लास्टिक का उपयोग करना है। भारत में ई-कचरा जिस दर से बढ़ रहा है और उससे देश के पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है, आने वाले वक्त में उसके घातक परिणाम देखने को मिलेंगे। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) ने चेतावनी दी है कि भारत और चीन जैसे देशों ने ई-कचरे के पुनर्चक्रण में तेजी नहीं दिखाई और इसमें अत्याधुनिक तकनीक का इस्तेमाल नहीं किया, तो जगह-जगह ई-कचरे के पहाड़ खड़े नजर आएंगे। आज भारत में एक लाख टन रेफ्रिजरेटर का कचरा, पौने तीन लाख टन टीवी का कचरा, छप्पन हजार टन से ज्यादा कंप्यूटरों का कचरा, चार हजार सात सौ टन प्रिंटरों का कचरा और एक हजार सात सौ टन मोबाइल फोन का

कचरा प्रति वर्ष तैयार होता है। भारत में कचरे के रिसाइक्लिंग की कोई सटीक प्रणाली लागू नहीं की गई है। अधिकतर ई-कचरा अनियोजित तरीके से इकट्ठा और नष्ट किया जाता है और यह कार्य स्थानीय कबाड़ी करते हैं। पुनर्चक्रण के लिए बड़े और सुनियोजित कारखाने तक **नहीं** लगाए गए हैं। कबाड़ी ई-कचरे में से बहुमूल्य धातुएं प्राप्त कर करते हैं, हालांकि यह मात्रा काफी कम होती है और **अधिकतर** कचरा यों ही छोड़ दिया जाता है।

भारत को ई-कचरे की समस्या के स्थायी समाधान के लिए यूरोपीय देशों में प्रचलित व्यवस्था की तर्ज पर पुनर्चक्रण और विधि प्रक्रिया विकसित करनी चाहिए, जहां इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद तैयार करने वाली कंपनियों को ही इन उत्पादों को उनके इस्तेमाल के बाद पुर्नचक्रण के लिए जवाबदेह बनाया जाता है। या तो कंपनियां इन उत्पादों को स्वयं पुनर्चक्रित करती हैं या फिर इस कार्य को किसी तीसरे पक्ष को सौंप देती हैं। कई देशों में इस सवाल का जवाब इस व्यवस्था को बदल कर दिया गया है, कचरे से संबंधित शुल्क का भुगतान इसे इकट्ठा करने या लाने-ले जाने के **लिए** नहीं किया जाता, बल्कि कचरे के निपटान के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, स्वीडन और अमेरिका में भराव **क्षेत्र** में कचरा फेंकने के लिए भारी प्रवेश शुल्क वसूला जाता है। स्वीडन **में** भराव क्षेत्र कर भी लगाया जाता है। भारी भरकम प्रवेश शुल्क नगर निगमों को भराव क्षेत्र में कचरा फेंकने से रोकता है। वर्ष 2013 में स्वीडन में कचरा फेंकने के लिए औसतन 212 डॉलर प्रति टन वसूले जाते थे, जबकि अमेरिका में डेढ़ सौ डॉलर प्रति टन।

बेहतर प्रबंधन से ई-कचरे का नवीनीकरण या सुरक्षित निपटान किया जा सकता है। इसके **लिए** ई-कचरे में कमी लाना, पुराने उपकरणों की मरम्मत, फिर से उपयोग करने वाली वस्तुओं का निर्माण करना और **पुनर्चक्रण** बेहतर कदम साबित हो सकते हैं। जागरूकता की कमी और **नष्ट** करने की मुश्किल प्रक्रिया के कारण ई-कचरा **दुनिया** भर के लिए मुसीबत व बीमारियों का घर बनता जा रहा है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 18-02-20

सैन्य राहों पर महिलाओं की नई मंजिल

ऋषिता आचार्य, लेफ्टिनेंट कर्नल (सेवानिवृत्त)

सेना में महिलाओं को स्थाई कमीशन देने का सुप्रीम कोर्ट का फैसला ऐतिहासिक है। इस आदेश का लंबे समय से इंतजार था। इसके खिलाफ एक तर्क यह दिया जाता रहा कि पुरुष जवानों को महिला अफसर से आदेश लेने में हिचकिचाहट होती है। दलील दी जा रही थी कि हमारा **ग्रामीण** समाज अब भी पुरुषवादी सोच रखता है और **पुरुष** मानसिकता महिलाओं को बतौर अफसर स्वीकार नहीं कर पाती। मगर असलियत इसके बिल्कुल अलग है। 13 साल **मैंने** सेना में रहकर देश की सेवा की है। इन वर्षों में कभी ऐसा नहीं लगा कि किसी जवान को मेरे आदेश से कोई परेशानी हुई या उसने उसे स्वीकार न किया हो। हमारी सेना विश्व की इतनी अच्छी संस्था है कि ऐसी किसी चीज के बारे में आप सोच ही नहीं सकते। अगर आप एक बेहतर अफसर हैं, तो आपसे किसी जवान को कोई दिक्कत नहीं आती, बल्कि वे हमेशा सहयोग करते हैं। पुरुषवादी मानसिकता कहीं भी आडे नहीं आती, और न ही महिला अफसर होने के नाते आपको वहां कमतर आंका जाता

है। रही बात जवानों के आदेश न मानने की (जो होती नहीं है), तो यह बात किसी के साथ हो सकती है; फिर चाहे वह पुरुष अफसर हो या फिर महिला अफसर।

असल में, स्थाई कमीशन न मिलने के कारण कुछ अन्य तरह की दिक्कतें पेश आती थीं। सबसे पहली दिक्कत तो यह कि महिला अफसरों को यह पता नहीं होता था कि 14 साल तक सेवा देने के बाद उन्हें अपने पुरुष समकक्षों की तरह आगे मौका मिलेगा या नहीं? वे एक उलझन में जीती थीं। मैंने खुद 13 साल तक सेना में सेवा दी है। पर इसके बाद मैं एक कॉरपोरेट कंपनी में शामिल हो गई। इसकी वजह यही थी कि अगर मैं और ज्यादा इंतजार करती, तो संभव है कि इस तरह के अवसर मुझे नहीं मिल पाते। और मेरे लिए वे तमाम दरवाजे भी बंद हो जाते, जहां मैं बेहतर कर सकती थी। यह समस्या दूसरी तमाम महिला अफसरों के सामने भी आती रही है। जब आपको यह पता नहीं होगा कि आपकी नौकरी स्थाई है या नहीं, तो इस तरह की समस्या आएगी ही। सुखद बात यह है कि अब ऐसा नहीं हो सकेगा। अब महिलाएंं भारतीय सेना को नौकरी के एक अवसर के रूप में नहीं, बल्कि एक करियर के रूप में लेंगी। अपना पूरा कार्यकाल करेंगी।

सुप्रीम कोर्ट का सोमवार का आदेश देर से जरूर आया है, मगर दुरुस्त आया है। वायु सेना और नौसेना ने काफी पहले से ही महिलाओं को स्थाई कमीशन देना शुरू कर दिया था। वहां महिलाएं वे तमाम काम करती हैं, जो पुरुष अफसर करते हैं। थल सेना में कॉम्बैट आम्र्स में ऐसा नहीं है। अब सेना में स्थाई कमीशन मिलने के बाद बतौर करियर अपनी सेवा देने वाली महिलाएं बीच में अपनी सेवा छोड़ने से बचेंगी। उन्हें अपने पुरुष समकक्षों के समान अवसर मिलेंगे। पेंशन मिलेगी। देखा जाए, तो उन्हें सशक्त बनाने की दिशा में सर्वोच्च अदालत का यह आदेश मील का पत्थर साबित होगा।

बेशक यह फैसला उनके स्थाई कमीशन को लेकर आया है और इसमें युद्धक्षेत्र में उनके काम करने को लेकर कुछ ठोस नहीं कहा गया है, लेकिन यह आदेश भरोसा जगाता है। उम्मीद है कि जल्द ही महिलाएं दुश्मनों से मोर्चा लेने की सबसे अगली कतार में खड़ी दिखेंगी। दरअसल, सेना के सभी युद्धक अंग अपनी-अपनी जरूरतों के हिसाब से कोर्स कराते हैं। चूंकि अब तक युद्धक अंगों में इन्फैंटरी, आर्मर्ड और आर्टिलरी में महिलाओं को कमीशन नहीं दी गई है, इसलिए महिलाएं इनमें कोर्स कर ही नहीं सकतीं। बाकी सभी अंगों में वे कमीशंड होती रही हैं। ट्रेनिंग खत्म करते ही बतौर लेफ्टिनेंट उनकी नियुक्ति होती थी। अब स्थाई कमीशंड होते ही पुरुषों के समान लेफ्टिनेंट कर्नल के ऊपर पदानुक्रम में तरक्की पाने का उन्हें मौका मिलेगा। उनमें नए उत्साह का संचार होगा। जोश-जुनून के साथ वे आगे बढ़ने के बारे में सोचेंगी।

थल सेना में इन्फैंटरी, आर्मर्ड और आर्टिलरी को छोड़कर बाकी सभी अंगों के सहयोगी सदस्य के तौर पर महिलाएं अशांत क्षेत्रों में अपनी सेवा देती रही हैं। इसलिए यह मानसिकता कि महिलाएं युद्ध भूमि में सफल नहीं हो सकेंगी, गलत है। मैं इससे इत्तफाक नहीं रखती। सेना में एक मुहावरा काफी चर्चित है, शांतिकाल में सैन्य अभ्यासों की कहीं ज्यादा जरूरत होती है। हमारी फौज भी ऐसा ही करती है। तपते रेगिस्तान हों या ठंडे प्रदेश, महिलाएं इन सैन्य अभ्यासों में बराबर शामिल होती रही हैं। इन अभ्यासों में ठीक उसी तरह के माहौल पैदा किए जाते हैं, जैसे युद्ध में होते हैं। यहां तो महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अभ्यास करती हैं। कहीं भी शारीरिक दुर्बलता का एहसास नहीं होता। तो फिर कॉम्बैट आम्र्स में उनका प्रवेश वर्जित क्यों हो? अपने कार्यकाल में मैं भी तमाम तरह के अभ्यासों में शामिल हुई, और कहीं भी मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। हां, महिला होने के नाते कभी कुछ अलग जरूरत महसूस हो सकती है, लेकिन उसे महिलाएं कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने देतीं। याद रखिए, बलिदान देने में हम महिलाएं कभी पीछे नहीं रही हैं।

कुल मिलाकर, सोमवार का सुप्रीम कोर्ट का आदेश महिलाओं के लिए भविष्य की नई राह दिखाता है। उसने सही कहा गया है कि महिलाओं को लेकर हमें अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए। स्थाई कमीशन देकर जिस तरह सेना में सेवा दे रही महिलाओं को एक समान मौके दिए गए हैं, उसी तरह उम्मीद है कि कॉम्बैट आम्र्स में भी उन्हें शामिल किया जाएगा, जहां वे कहीं से भी कमतर साबित नहीं होंगी।

THE HINDU

Date: 18-02-20

Women-at-arms

In allowing women permanent commission, the court has demolished gender stereotypes

EDITORIAL

The Supreme Court has delivered a sharp rebuke to the government by asking it to adhere to its own stated policy, articulated on February 25, 2019, on granting permanent commission to women in the Short Service Commission (SSC). Though women are absorbed into the SSC, they are now denied permanent commission in most branches of the Indian Army. More importantly, in furthering the principle of equality and non-discrimination enshrined in the Constitution, the Court has at the same time come down heavily on the stereotypes of women and their physiological features that were consistently put across in the government's submissions to deny equal opportunity to women who fulfil the same criteria their male counterparts do. As long as society holds strong beliefs about gender roles there will not be change of mindsets, the top court observed. Indeed, the Court has torn into a number of contradictions inherent in the government's arguments that gravely weaken its case and expose inherent prejudices. For instance, it was submitted that deployment of women officers was not advisable in conflict zones where there was "minimal facility for habitat and hygiene". Yet, the government admitted to the Court that 30% of the total number of women officers are in fact deputed to conflict areas. In directing the government to grant permanent commission to those women who opt for it, in 10 branches of the SSC, and by ordering the government to level the playing field, the Court has forced acknowledgement of the sterling role women have played and continue to play, shoulder to shoulder, with their male counterparts, for the security of the nation. It has also made recommendations to correct the anomalies including in the matter of pensions due to women.

It is a telling state of affairs that though Prime Minister Narendra Modi announced on August 15, 2018 that permanent commission would be granted to serving women officers of the armed forces, it needed the Supreme Court to prod the government into doing it. The efforts of the litigants, who have waged an uphill battle since 2003, fighting their way up from the Delhi High Court, which ruled in their favour 10 years ago — and the government wilfully ignoring it — all the way up to the Supreme Court, deserve applause. That this discrimination should happen even while the Indian Army experiences a shortfall of officers by about 10,000 in the ranks is all the more galling. It is not as if there is surfeit of women

officers: a mere 1,653 out of 40,825. Given the inherent flaws in the structure, implementation and change are not likely to happen soon, even given the Court's deadline of three months.